आलापपद्धति : एक समीक्षात्मक अध्ययन

● डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

श्रीमद्देवसेनसूरि विरचित "आलापपद्धति" एक महत्त्वपूर्ण संस्कृत गद्यमें लिखित नय-प्ररूपक रचना है। सर्वप्रथम यह रचना सन् १९०५ में सनातन जैन ग्रन्थमालासे प्रथम गुच्छकमें प्रकाशित हुई थी। इसकी भाषा सरल होनेके कारण इसका प्रचार बहुत अधिक हुआ। मूल आलापपद्धति कई बार मुद्रित हो चुकी। इसका एक संस्करण श्री सकल दिगम्बर जैन पंचान, नातेपुते (सोलापुर) से वीर सं० २४६० में प्रकाशित हुआ था। मूलके साथ इसमें हिन्दी अनुवाद भी भावार्थ सहित है। अनुवादक हैं - न्यायवाचस्पति पं० हजारीलाल न्यायतीर्थ। इसके सम्पादक व संशोधक हैं—पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री। अनुवादमें पण्डितजीने कहीं-कहीं परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा यथोचित संशोधन किया है। प्रस्तावना पण्डितजीकी लिखी हुई है जो अत्यन्त संक्षिप्त होनेपर भी महत्त्वपूर्ण है। पण्डितजी लिखते हैं—

"वैसे तो जैनधर्म का साहित्यिक भण्डार अपरिमित है और उसमें गुण, पर्याय और स्वभाव आदिका वर्णन करनेवाले कई महत्त्वशाली ग्रन्थ हैं। परन्तु इस ग्रन्थमें जिस पद्धतिके अनुसार विषय-विवेचन किया गया है वह पद्धति निराली और अपूर्व है। इसमें गुण, पर्याय, स्वभाव, उपनय गुणोंकी व्युत्पत्ति, पर्यायकी व्युत्पत्ति, स्वभावोंकी व्युत्पत्ति, स्वभाव और गुणोंमें भेद, पदार्थों को सर्वथा अस्ति आदि एक स्वभाव माननेमें दूषण, नय-दृष्टिसे वस्तु-स्वभाव-वर्णन, प्रमाणका लक्षण, व्युत्पत्ति और उसके भेद, नयका लक्षण, व्युत्पत्ति और उसके भेद, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी तथा उनके भेदों की व्युत्पत्ति और नय तथा उपनयोंके स्वरूपका वर्णन है। इस ग्रन्थकी रचना संस्कृत गद्यमें है, भाषा सरल है। बीच-बीचमें दूसरे ग्रन्थोंके भी श्लोक रूपमें मूल विषयकी पुष्टि करनेवाले प्रमाण उद्धृत किये हैं।

इस ग्रन्थके कर्ता श्री देवसेनसूरि हैं। आलापपद्धतिके सिवाय आपने दर्शनसार, भावसंग्रह, आराधनासार और तत्त्वसार आदि कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है।"

पण्डितजीकी टिप्पणियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। "आलापपद्धति" में निश्चय नयके नौ भेद माने गये हैं— द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत। इसकी टिप्पणीमें आप लिखते हैं—पंचाध्यायीकारने निश्चयनयको एक ही माना है, अनेक नहीं। क्योंकि जो पुरुष एक निश्चयनयको शुद्ध द्रव्यार्थिक, अशुद्ध द्रव्यार्थिक आदि रूपसे अनेक और सोदाहरण मानते हैं, वे अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि तथा सर्वज्ञकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले हैं, ऐसा पंचाध्यायीकारने कहा है। इसलिए उन्होंने शुद्ध द्रव्यार्थिक, अशुद्ध द्रव्यार्थिक आदि सम्पूर्ण भेदोंको व्यवहारनयमें ही गर्भित किया है। और उस व्यवहारनयको मिथ्या तथा त्याज्य माना है। केवल एक निश्चयनयको ही यथार्थ और उपादेय माना है।"

इस प्रकारकी टिप्पणियोंके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भसे ही पण्डितजीकी प्रवृत्ति तुलनात्मक अध्ययन की रही है। बड़े नयचक्रकी गाथाओंसे "आलापपद्धति" के सूत्रोंका साम्य स्थान-स्थानपर दर्शाया गया है। यथा—"कर्मोपाधिसापेक्षो शुद्धद्रव्यार्थिकः यथा—कर्मोपाधिजभाव आत्मा।"
इसकी टिप्पणी है—भावे सरायमादी सव्वे जीवंमि जो दु जपेदि।
सो हु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहि सावेक्खो ॥ नय० २१

कहीं-कहीं पर "आलापपद्धति तथा माइल्ल धवल 'नयचक्र" में अत्यन्त साम्य है। जैसे कि—उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा—द्रव्यं नित्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पणी है—उप्पादवयं गौणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥ नय० गा० १९.१

न्यायवाचस्पति पं० हजारीलालका अनुवाद केवल शब्दार्थमात्र नहीं है। प्रत्येक विषयको उन्होंने स्पष्ट किया है। इसके साथ ही पं० फूलचन्द्रजीके टिप्पणोंसे उसमें नवीनता परिलक्षित होने लगी है। उदाहरणके लिए, मनःपर्ययज्ञानके सम्बन्धमें पं० हजारीलालने लिखा था—"द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिए हुए बिना किसीकी सहायताके जो चिंतित, अचिंतित, अर्धचिंतित आदि अनेक भेदरूप दूसरेके मनमें स्थित-रूपी[1] अर्थको स्पष्ट जानता है उसको मनःपर्ययज्ञान[2] कहते हैं। यह ज्ञानरूपी पुद्गल द्रव्यकी सम्पूर्ण पर्यायोंको न जानकर कुछ पर्यायोंको जानता है, इसलिए देश कहलाता है। और जितनी पर्यायोंको जानता है, उतनी पर्यायोंको इन्द्रिय व मनकी[3] सहायताके बिना ही स्पष्ट रूपसे प्रत्यक्ष जानता है, इसलिए प्रत्यक्ष कहलाता है।" इस पर पण्डितजीकी टिप्पणी है—

इसी प्रकारसे नयके प्रकरणमें अनेक पृष्ठोंपर "तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक" के उद्धरण देकर टिप्पणी लिखे गये हैं। अनुवादमें भी इतना जोड़ा गया दिखता है—'इस प्रकार कालादिकके भेदसे भी पदार्थमें भेद नहीं माननेसे जो दूषण आते हैं, उनका यहाँपर संक्षेपमें ही उल्लेख किया गया है। जिनको इस विषयमें विशेष जाननेकी इच्छा हो वे "श्लोकवार्तिक" को देखें।"

कहीं-कहीं इन टिप्पणोंमें विस्तारके भयसे संक्षेपमें सार प्रकट किया गया है जो साधारण पाठकोंके लिए ही नहीं, विद्वानोंके लिए भी महत्त्वपूर्ण है। उदाहरणके लिए, अनुवादमें एक पंक्ति है—"इसके सिवाय इन सातों ही नयोंमें-से पूर्वपूर्वके नय व्यापक होनेसे कारण रूप तथा प्रतिकूल महाविषय वाले हैं।" इसे स्पष्ट करनेके लिए पण्डितजीने टिप्पणीमें ५-६ पंक्तियाँ लिखकर फिर लिखा है—'सारांश यह है कि सातों नयोंमेंसे नैगमनय केवल कारण रूप है और एवंभूतनय केवल कार्यरूप है। तथा शेष पाँच नय पूर्व-पूर्वके नयोंकी अपेक्षासे कार्यरूप और आगे-आगेके नयोंकी अपेक्षासे कारण रूप हैं।"

प्रमेयका लक्षण है—प्रमाणेन स्वपरत्वरूपपरिच्छेद्यं प्रमेयम्। इसका टिप्पणी है—१. "प्रमाणेन स्वपरस्वरूपपरिच्छेदकेन परिच्छयं प्रमेयं", ऐसा पाठ होता तो बहुत अच्छा था। इस प्रकारसे कई पाठ सुझाये गये हैं। टिप्पणियोंमें यथास्थान पाठोंका उल्लेख किया गया है।

---

१. मनःपर्ययज्ञानरूपी द्रव्यके सम्बन्धसे संसारी जीवको भी जानता है।

२. "परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्ययः" अर्थात् दूसरेके मनमें स्थित अर्थको मन कहते हैं। और उस मनको जो जानता है उसको मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

३. पंचाध्यायीकार ने मनःपर्ययज्ञानमें भी मनकी सहायता मान करके मनःपर्ययज्ञान मनकी सहायतासे उत्पन्न होता है, इसलिए देश कहलाता है। और शेष इन्द्रियोंकी सहायतासे उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए प्रत्यक्ष कहलाता है ऐसा माना है। मनःपर्ययज्ञानके अन्य दो भेद हैं—प्रतिपाती, अप्रतिपाती। प्रतिपाती उपशमश्रेणीकी अपेक्षा कहा गया है। अप्रतिपाती मनःपर्ययज्ञान क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा कहा गया है। इसी प्रकार—"किसी-किसीने अतीतवर्तमान, वर्तमानातीत, अनागतवर्तमान, वर्तमानानागत, अनागतातीत और अतीतानागत इस तरह नैगमनयके छह भेद माने हैं, परन्तु ये सब भेद नैगमनयके भूत, भावि आदि उक्त तीनों भेदोंमें ही गर्भित हो जाते हैं। श्लोकवार्तिककारने द्रव्यनैगम पर्यायनैगम आदि रूपसे नैगमनयके ९ भेद माने हैं।"

(पृ० ६४ की टिप्पणी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त ग्रन्थका अनुवाद भी बहुत सरल तथा सुन्दर हुआ है। शुद्ध स्वभाव और अशुद्ध स्वभावकी व्युत्पत्ति की गई है—शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम्। इसका अर्थ किया गया है—केवल भावको अर्थात् परका जिसमें कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ऐसे भावको शुद्ध स्वभाव कहते हैं। और शुद्ध स्वभावसे विपरीत भावको अशुद्ध स्वभाव कहते हैं।

भावार्थ—शुद्ध भावोंकी अपेक्षासे द्रव्य शुद्ध स्वभाववाला और अशुद्ध भावोंकी अपेक्षासे द्रव्य अशुद्ध स्वभाववाला कहलाता है।

"लक्षण" का अर्थ गुण किया गया है। टिप्पणमें इसका स्पष्टीकरण है—यहाँ पर "लक्षण" शब्दसे गुणका ग्रहण किया गया है, क्योंकि लक्षण, शक्ति, धर्म, स्वभाव, गुण और विशेष आदि ये सब शब्द एक गुण रूप अर्थके ही वाचक हैं अर्थात् गुणके नाम हैं। पंचाध्यायीमें भी कहा है—

शक्तिर्लक्ष्म विशेषो धर्मो रूपं गुणः स्वभावश्च।
प्रकृतिः शीलं चाकृतिरेकार्थवाचका अमी शब्दाः ॥४८॥

संक्षेपमें, शास्त्राकार १३९ पृष्ठोंमें मुद्रित उक्त ग्रन्थ नयोंको समझनेके लिए एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अनुवादकी दृष्टिसे यह एक सफल रचना है। अनुवाद करनेवालोंकी इस प्रकारके ग्रन्थोंको सामने रखकर आदर्श मानककी अवधारणा निर्धारित करनी चाहिए। इससे सरलतया भाषान्तरणका रहस्य बुद्धिगम्य हो सकता है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org